Shodh Prabha: A Multidisciplinary Journal
ISSN: 3108-2726 (Online), 3108-2890 (Print), Volume-2, Issue-1, (Jan - Feb) 2026

लोक-परंपरा में ग्राम देवी : मिथकीय आख्यानों और सामाजिक स्मृति का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. रितेश्वर नाथ तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
Email: riteshwarjpu@gmail.com

सारांश :

ग्राम देवी केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि सामाजिक स्मृति, सामुदायिक नैतिकता और ऐतिहासिक अनुभव की संरचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। मिथकीय आख्यानों में निहित महामारी, अकाल, बाढ़ तथा सामाजिक संकटों की स्मृतियाँ ग्रामीण समाज द्वारा सांस्कृतिक रूप में संरक्षित की जाती हैं। लेख में स्मृति-विमर्श, नृवंशात्मक दृष्टि और समाजशास्त्रीय विश्लेषण के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि ग्राम देवी के अनुष्ठान सामूहिक पहचान और सामाजिक पुनर्संरचना के साधन हैं। बिहार के क्षेत्रीय उदाहरणों के साथ दक्षिण और पश्चिम भारत की ग्रामदेवी परंपराओं का तुलनात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है कि क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद संरचनात्मक तत्वों संकट की सांस्कृतिक व्याख्या, पवित्र भूगोल का निर्माण और अनुष्ठानिक सहभागिता में व्यापक समानता विद्यमान है। उपनिवेशकालीन लेखन और आधुनिकता के प्रभावों की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि ग्राम देवी की परंपरा समय के साथ रूपांतरित अवश्य हुई है, किंतु उसकी मूल सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना जीवित बनी हुई है। ग्राम देवी की अवधारणा भारतीय इतिहास की उस जीवित धारा को उद्घाटित करती है, जो अभिलेखीय स्रोतों से परे लोकस्मृति और सांस्कृतिक व्यवहारों में संरक्षित रहती है।

बीज शब्द : ग्राम देवी, लोकपरंपरा, मिथकीय आख्यान, सामाजिक स्मृति, पवित्र भूगोल, लोकधर्म, स्त्री-शक्ति, ग्रामीण समाज, सांस्कृतिक इतिहास, उपनिवेशकालीन व्याख्या

प्रस्तावना

भारतीय लोकपरंपरा में ग्राम देवी की अवधारणा ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक संरचना का केन्द्रीय तत्व रही है। ग्राम देवी केवल धार्मिक श्रद्धा का विषय नहीं, बल्कि सामुदायिक आत्मबोध, नैतिक अनुशासन, पर्यावरणीय संवेदना और ऐतिहासिक स्मृति की जीवित अभिव्यक्ति हैं। भारतीय ग्राम-जीवन में देवी का स्थान प्रायः ग्राम-सीमा, प्राचीन वृक्ष, जल-स्रोत या किसी ऊँचे टीले के समीप होता है। यह स्थान-चयन मात्र धार्मिक भावनाओं का परिणाम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भूगोल और सामुदायिक संरक्षा की प्रतीकात्मक व्यवस्था है। देवी ग्राम की 'सीमा-रक्षिका' और 'समृद्धि-अधिष्ठात्री' दोनों रूपों में प्रतिष्ठित होती हैं। भारतीय इतिहासलेखन की मुख्यधारा में लंबे समय तक राजनीतिक घटनाओं, राजवंशों और शास्त्रीय धर्मग्रंथों को केंद्र में रखा गया। फलतः लोकधर्म, ग्राम-आधारित आस्थाएँ और स्थानीय देवियों की परंपराएँ इतिहास की परिधि में चली गईं। औपनिवेशिक इतिहासलेखन ने भारतीय धार्मिक जीवन को तर्कहीन और अंधविश्वासी बताकर उसकी सांस्कृतिक जटिलता की उपेक्षा की। जेम्स मिल ने भारतीय समाज को स्थिर और अवैज्ञानिक कहकर लोकपरंपराओं को प्रगति-विरोधी रूप में प्रस्तुत किया।[1] इस दृष्टिकोण ने लोकविश्वासों को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में देखने की संभावना को सीमित किया। राष्ट्रवादी इतिहासलेखन ने भारतीय संस्कृति की प्राचीनता और महानता को वेद, उपनिषद और पुराणों के आलोक में प्रतिष्ठित किया[2], किंतु ग्राम देवी जैसी स्थानीय आस्थाओं के सामाजिक-ऐतिहासिक महत्व पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया। यह स्थिति इस तथ्य को रेखांकित करती है कि लोकधर्म और शास्त्रीय धर्म के मध्य संबंधों की पुनर्समीक्षा आवश्यक है। डी.

डी. कोसांबी ने भारतीय इतिहास को भौतिक आधारों और सामाजिक संरचनाओं के संदर्भ में समझने का प्रयास करते हुए लोकदेवताओं की भूमिका पर बल दिया।[3] उनके अनुसार लोकविश्वास सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के दर्पण होते हैं और ऐतिहासिक प्रक्रिया का अविभाज्य अंग हैं। ग्राम देवी की परंपरा ग्रामीण समाज के उन अनुभवों से निर्मित हुई है, जो प्राकृतिक अनिश्चितता, रोग, अकाल, बाढ़, सूखा और सामाजिक तनाव से जुड़े हैं। इन अनुभवों को मिथकीय आख्यानों में रूपांतरित कर सामुदायिक स्मृति का स्थायी हिस्सा बनाया गया। मिथक यहाँ केवल कल्पना नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अनुभव का सांस्कृतिक अनुवाद है। रोमिला थापर ने भारतीय धार्मिक परंपरा को बहुस्तरीय बताया है, जहाँ लोक और शास्त्र के बीच निरंतर संवाद चलता रहता है।[4] ग्राम देवी की अवधारणा इसी संवाद का परिणाम है- स्थानीय आस्था और व्यापक शक्ति-परंपरा का समन्वित रूप।

ग्राम देवी की उपासना में अनुष्ठान, व्रत, लोकगीत और सामूहिक मेले सामाजिक संबंधों के पुनर्संरचनात्मक माध्यम बनते हैं। देवी-पूजा केवल दैवी कृपा की याचना नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना का सांस्कृतिक साधन है। देवी के मिथकीय आख्यानों में संकट और उसके समाधान की संरचना स्पष्ट दिखाई देती है। संकट सामूहिक अनुभव है, देवी का प्राकट्य सांस्कृतिक आश्वासन है और अनुष्ठान सामुदायिक पुनर्संरचना का माध्यम है। इस प्रकार ग्राम देवी की परंपरा इतिहास, स्मृति और सांस्कृतिक व्यवहार के संगम पर स्थित है। लोकपरंपरा का यह विमर्श यह संकेत करता है कि इतिहास केवल अभिलेखों और शिलालेखों में नहीं, बल्कि लोकस्मृति, मिथकीय आख्यानों और अनुष्ठानिक व्यवहारों में भी संरक्षित रहता है। ग्राम देवी की अवधारणा ग्रामीण समाज की सामूहिक चेतना का वह रूप है, जिसमें धार्मिक आस्था, पर्यावरणीय अनुभव और सामाजिक नैतिकता अंतर्ग्रथित हैं। अतः ग्राम देवी का अध्ययन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को व्यापक और बहुआयामी दृष्टि प्रदान करता है।

वैदिक पूर्वपीठिका से मध्यकालीन ग्रामीण संरचना तक : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ग्राम देवी की अवधारणा किसी एक ऐतिहासिक क्षण की उपज नहीं, बल्कि दीर्घकालिक सांस्कृतिक विकास का परिणाम है। यद्यपि 'ग्राम देवी' शब्द वैदिक साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता, तथापि मातृशक्ति, पृथ्वी और प्रकृति-देवियों की उपासना में इसकी वैचारिक पूर्वपीठिका स्पष्ट दिखाई देती है। ऋग्वैदिक सूक्तों में पृथ्वी को 'विश्वम्भरा' और 'पोषिणी' के रूप में संबोधित किया गया है, जो संरक्षण और उर्वरता की दैवी सत्ता का संकेत है।[5] यह मातृभाव आगे चलकर स्थानीय ग्राम-देवियों की अवधारणा में रूपांतरित होता प्रतीत होता है।उत्तरवैदिक और ब्राह्मण ग्रंथों में क्षेत्रीय देवताओं तथा ग्राम-विशिष्ट आस्थाओं के संकेत मिलते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि धार्मिक जीवन केवल यज्ञीय और शास्त्रीय विधान तक सीमित नहीं था। पुराणिक साहित्य में शक्ति-उपासना का जो सशक्त स्वरूप विकसित हुआ, उसने स्थानीय देवियों के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया। मार्कंडेय पुराण के 'देवी महात्म्य' खंड में देवी को सार्वभौमिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है[6]; किंतु इसी कालखंड में विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय देवियों की प्रतिष्ठा भी समानांतर रूप से विकसित होती रही। यह तथ्य लोक और शास्त्र के मध्य अंतःसंवाद को रेखांकित करता है।

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में ग्राम-संरचना और भूमि-अनुदानों की व्यवस्था ने स्थानीय धार्मिक संस्थाओं को सुदृढ़ किया। रामशरण शर्मा ने प्रारंभिक मध्यकालीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामंतवादी संरचनाओं का विश्लेषण करते हुए यह संकेत किया है कि स्थानीय देवालय ग्राम-संगठन के केंद्र के रूप में कार्य करते थे।[7] इन देवालयों के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण, नैतिक अनुशासन और सामुदायिक एकता का निर्माण होता था। ग्राम देवी की उपासना इसी ग्रामीण संरचना के भीतर विकसित हुई, जहाँ देवी ग्राम की रक्षिका और न्यायाधीश दोनों रूपों में प्रतिष्ठित थीं। मध्यकालीन भारत में शक्ति-परंपरा और तांत्रिक साधनाओं के प्रसार ने भी स्थानीय देवियों की प्रतिष्ठा को बल दिया। दुर्गा, काली और चामुंडा जैसे शास्त्रीय रूपों के साथ-साथ ग्राम-विशिष्ट देवियों का अस्तित्व बना रहा। कई क्षेत्रों में

स्थानीय देवी को व्यापक शक्ति-परंपरा से जोड़ा गया, किंतु उनकी स्थानीय पहचान समाप्त नहीं हुई। रोमिला थापर ने भारतीय धार्मिक परंपरा को बहुस्तरीय और गतिशील बताया है, जहाँ स्थानीय आस्थाएँ व्यापक सांस्कृतिक संरचना के साथ समन्वित होती हैं।[8] ग्राम देवी की परंपरा इसी गतिशीलता का प्रमाण है। इस ऐतिहासिक विकासक्रम से स्पष्ट होता है कि ग्राम देवी की अवधारणा वैदिक मातृशक्ति की सांस्कृतिक स्मृति, पुराणिक शक्ति-परंपरा और मध्यकालीन ग्रामीण संस्थाओं के समन्वय से निर्मित हुई। यह न तो पूर्णतः शास्त्रीय है और न ही पूर्णतः लोक; बल्कि दोनों के अंतर्संबंध का परिणाम है। ग्राम देवी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस बात को रेखांकित करती है कि भारतीय धार्मिक संरचना सदैव बहुस्तरीय रही है, जिसमें स्थानीय और सार्वभौमिक तत्व एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित रहते हैं। अतः ग्राम देवी का ऐतिहासिक अध्ययन भारतीय समाज की दीर्घकालिक सांस्कृतिक निरंतरता को समझने का माध्यम प्रदान करता है। यह निरंतरता वैदिक मातृभाव से प्रारंभ होकर मध्यकालीन ग्रामीण संरचनाओं तक विकसित होती है और आज भी लोकपरंपरा में जीवित है।

मिथकीय आख्यानों की संरचना और सामाजिक स्मृति का ऐतिहासिक विश्लेषण :

ग्राम देवी की परंपरा का सर्वाधिक सशक्त आयाम उसके मिथकीय आख्यान हैं। ये आख्यान केवल धार्मिक कथा-रूप नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की ऐतिहासिक अनुभूतियों, संकट-स्मृतियों और नैतिक संरचनाओं का सांस्कृतिक संहिताकरण हैं। ग्राम देवी से संबंधित कथाओं में प्रायः किसी सामूहिक संकट महामारी, अकाल, बाढ़, सामाजिक अन्याय या बाहरी आक्रमण का उल्लेख मिलता है। कथा की संरचना सामान्यतः तीन चरणों में विकसित होती है:

(1) संकट की उत्पत्ति,
(2) देवी का प्राकट्य या स्वप्न-संकेत, और
(3) अनुष्ठान के माध्यम से संकट का समाधान।

यह त्रिस्तरीय संरचना दर्शाती है कि मिथक संकट को अर्थ प्रदान करता है और सामुदायिक संतुलन की पुनर्स्थापना का सांस्कृतिक माध्यम बनता है। मिथकीय आख्यानों को केवल काल्पनिक मानना उनके ऐतिहासिक महत्व को कम करके आँकना होगा। सांस्कृतिक स्मृति के सिद्धांतकार जान अस्मान ने यह प्रतिपादित किया है कि मिथक दीर्घकालिक सामाजिक स्मृति के वाहक होते हैं, जिनके माध्यम से अतीत वर्तमान में सक्रिय बना रहता है।[9] ग्राम देवी की कथा किसी घटना का तथ्यात्मक विवरण नहीं देती, किंतु वह उस घटना की सामाजिक अनुभूति और सांस्कृतिक प्रभाव को संरक्षित करती है। उदाहरणार्थ, किसी महामारी की स्मृति देवी के 'कोप' के रूप में अभिव्यक्त होती है, जबकि रोग-निवारण देवी की 'कृपा' के रूप में। सामाजिक स्मृति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में मॉरिस हाल्बवैक्स का मत विशेष महत्व रखता है। उनके अनुसार स्मृति व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं में निर्मित होती है और समूह के माध्यम से संचरित होती है।[10] ग्राम देवी की कथा इसी सामूहिक स्मृति का रूपांतरण है। जब वार्षिक पूजा या मेले के अवसर पर कथा का पुनर्पाठ होता है, तो वह अतीत की स्मृति को वर्तमान में पुनर्जीवित करता है और सामाजिक निरंतरता को पुष्ट करता है। मिथकीय आख्यानों का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम उनका नैतिक-सांस्कृतिक संदेश है। कथाओं में देवी अन्याय का दंड देती हैं और सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना करती हैं। इस प्रकार मिथक सामाजिक अनुशासन को दैवी वैधता प्रदान करता है। एमिल दुर्खीम ने प्रतिपादित किया कि धार्मिक प्रतीक वस्तुतः समाज की सामूहिक नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।[11] ग्राम देवी की कथा में देवी समाज की उसी नैतिक शक्ति का प्रतीक बन जाती हैं। मिथकीय आख्यानों का स्थानिक आयाम भी उल्लेखनीय है। देवी का प्राकट्य प्रायः किसी विशेष स्थल वृक्ष, तालाब, टीले या ग्राम-सीमा से जुड़ा होता है। इससे वह स्थल 'स्मृति-स्थान बन जाता है, जहाँ अतीत की सांस्कृतिक स्मृति स्थायी रूप से स्थापित होती है। प्रत्येक अनुष्ठान उस स्थल की पवित्रता और ऐतिहासिक अर्थ को पुनर्स्थापित करता है। ग्राम देवी के मिथकीय आख्यान इतिहास और

स्मृति के संगम का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे घटनाओं का प्रत्यक्ष अभिलेख नहीं, बल्कि उनके सांस्कृतिक अर्थ का संरक्षण हैं। इस प्रकार लोकपरंपरा में निहित मिथक भारतीय इतिहास की उस जीवित धारा को उद्घाटित करते हैं, जो अभिलेखीय स्रोतों के बाहर भी सक्रिय रहती है।

अनुष्ठान, पवित्र भूगोल और सामुदायिक पुनर्संरचना :

ग्राम देवी की परंपरा में अनुष्ठान केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया हैं। देवी-पूजा, वार्षिक मेला, व्रत, जागरण, बलि या सामूहिक भोग जैसे अनुष्ठान ग्राम-समुदाय को एकत्रित करते हैं और सामूहिक पहचान को पुनर्स्थापित करते हैं। प्रत्येक अनुष्ठान अतीत की स्मृति का पुनर्पाठ है- मिथकीय कथा का दोहराव, संकट की स्मृति का पुनर्स्मरण और देवी-कृपा के प्रति आभार का सामूहिक प्रदर्शन। इस प्रकार अनुष्ठान सामाजिक स्मृति के सक्रिय पुनर्निर्माण का माध्यम बनते हैं। धर्म के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में एमिल दुर्खीम ने यह प्रतिपादित किया कि धार्मिक अनुष्ठान समाज की 'सामूहिक चेतना' को सुदृढ़ करते हैं।[12] जब ग्राम-समुदाय देवी-स्थल पर एकत्रित होता है, तो वह अपनी साझा नैतिक संरचना का पुनर्पुष्टि करता है। देवी की उपस्थिति वस्तुतः सामूहिक सामाजिक शक्ति का प्रतीक बन जाती है। अनुष्ठान का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम उसका स्थानिक संदर्भ है। ग्राम देवी का स्थल अक्सर पीपल या वट-वृक्ष के नीचे, तालाब के समीप या ग्राम-सीमा पर पवित्र भूगोल का निर्माण करता है। सांस्कृतिक भूगोल के अध्येता यी-फू तुआन ने 'पवित्र स्थान' की अवधारणा को इस रूप में समझाया है कि मनुष्य विशेष स्थलों को सांस्कृतिक अर्थ देकर उन्हें सुरक्षा और पहचान से जोड़ता है।[13] ग्राम देवी का स्थल ऐसा ही पवित्र स्थान है, जहाँ भूगोल और स्मृति का संलयन होता है। अनुष्ठान सामाजिक पदानुक्रम को भी अभिव्यक्त करते हैं। कौन पूजा करेगा, कौन प्रसाद बाँटेगा, किसे प्रमुख स्थान प्राप्त होगा, ये सभी सामाजिक संरचना को प्रतिबिंबित करते हैं। किंतु अनुष्ठान के दौरान सामूहिक सहभागिता एक अस्थायी सामुदायिक एकता का अनुभव भी कराती है। अनुष्ठान सिद्धांत के विश्लेषण में विक्टर टर्नर ने 'कम्युनितास ' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके अनुसार अनुष्ठान सामाजिक भिन्नताओं को अस्थायी रूप से शिथिल कर सामूहिकता का अनुभव उत्पन्न करता है।[14] ग्राम देवी के मेले में यही सामुदायिकता दृष्टिगोचर होती है। ग्राम देवी का पवित्र भूगोल पर्यावरणीय आयाम से भी जुड़ा है। वृक्ष, जल-स्रोत और ग्राम-सीमा को पवित्र बनाकर समाज प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का सांस्कृतिक तंत्र निर्मित करता है। देवी-स्थान की पवित्रता उस स्थल की रक्षा सुनिश्चित करती है। इस प्रकार धार्मिक विश्वास पर्यावरणीय संतुलन का सांस्कृतिक माध्यम बन जाता है। ग्राम देवी की परंपरा में अनुष्ठान, पवित्र स्थल और सामुदायिक सहभागिता मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं, जिसमें स्मृति, नैतिकता और भूगोल परस्पर अंतर्ग्रथित हैं। यह संरचना स्पष्ट करती है कि ग्राम देवी की उपासना केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि सामाजिक निरंतरता और सांस्कृतिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया है।

ग्राम देवी और लोकन्याय : नैतिक अनुशासन की सांस्कृतिक संरचना

ग्राम देवी की परंपरा का एक महत्वपूर्ण आयाम लोकन्याय की व्यवस्था से उसका संबंध है। ग्रामीण समाज में देवी-स्थान केवल पूजा-अर्चना का केंद्र नहीं, बल्कि सामाजिक अनुशासन और नैतिक निर्णय का भी प्रतीक रहा है। अनेक क्षेत्रों में यह परंपरा विद्यमान रही है कि विवाद की स्थिति में पक्षकार देवी के समक्ष शपथ लेते हैं या देवी-स्थल को साक्षी मानकर सत्य की पुष्टि करते हैं। यह विश्वास कि देवी असत्य बोलने वाले को दंड देंगी, सामाजिक नियंत्रण का सशक्त साधन बनता है। इस प्रकार देवी न्याय की दैवी अधिष्ठात्री के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं और लोकनैतिकता को वैधता प्रदान करती हैं। धर्म के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में एमिल दुर्खीम ने यह प्रतिपादित किया कि धार्मिक प्रतीक वस्तुतः समाज की सामूहिक नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।[15] ग्राम देवी की न्यायिक भूमिका इसी सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है। जब कोई व्यक्ति देवी के समक्ष शपथ लेता है, तो वह वस्तुतः

समुदाय की सामूहिक नैतिक शक्ति के प्रति उत्तरदायी बनता है। ग्रामीण संरचना के ऐतिहासिक अध्ययन में रामशरण शर्मा ने संकेत किया है कि प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में ग्राम-सभा और स्थानीय संस्थाएँ सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख माध्यम थीं।[16] धार्मिक स्थल और सामाजिक संस्था परस्पर अंतर्ग्रथित थे। अतः देवी-स्थान का न्यायिक उपयोग सामाजिक संरचना का स्वाभाविक विस्तार था। लोकधर्म के सांस्कृतिक अध्ययन में विद्यानिवास मिश्र ने यह प्रतिपादित किया कि लोकआस्था सामाजिक आचरण को नियंत्रित करने वाली नैतिक प्रणाली का कार्य करती है।[17] ग्राम देवी के प्रति श्रद्धा और भय दोनों सामाजिक अनुशासन को आंतरिक बनाते हैं। यह व्यवस्था बाह्य दंड की अपेक्षा आंतरिक नैतिक चेतना पर आधारित होती है। ग्राम देवी के मिथकीय आख्यानों में भी न्यायिक संरचना स्पष्ट दिखाई देती है। देवी अन्यायियों को दंड देती हैं, शपथभंग करने वालों को रोग या विपत्ति का शिकार बनाती हैं और धर्म-पालन करने वालों को संरक्षण प्रदान करती हैं। यह कथात्मक संरचना सामाजिक व्यवहार के लिए नैतिक दिशा-निर्देश प्रदान करती है। इस प्रकार लोकन्याय और धार्मिक आस्था का संबंध परस्पर पूरक है। यद्यपि आधुनिक राज्य-व्यवस्था और विधिक संस्थाओं के विस्तार ने औपचारिक न्यायिक तंत्र को सुदृढ़ किया है, तथापि ग्राम देवी के प्रति सांस्कृतिक आस्था अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी नैतिक नियंत्रण का आधार बनी हुई है। देवी के समक्ष सामूहिक निर्णय लेना समुदाय की एकता को सुदृढ़ करता है और विवाद को व्यक्तिगत संघर्ष के स्थान पर सामुदायिक प्रश्न में रूपांतरित कर देता है। ग्राम देवी की परंपरा में लोकन्याय का यह आयाम स्पष्ट करता है कि लोकधर्म सामाजिक स्थिरता और नैतिक अनुशासन की संरचना का अविभाज्य अंग है। देवी केवल आध्यात्मिक सत्ता नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन और न्याय की सांस्कृतिक अधिष्ठात्री हैं।

स्त्री-शक्ति, पितृसत्ता और ग्राम देवी की प्रतीकात्मक संरचना :

ग्राम देवी की परंपरा ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन में स्त्री-देवत्व की उच्च प्रतिष्ठा को अभिव्यक्त करती है, किंतु यह प्रतिष्ठा सामाजिक यथार्थ में किस प्रकार रूपांतरित होती है, यह प्रश्न गंभीर विश्लेषण की मांग करता है। देवी को ग्राम की रक्षिका, उर्वरता की अधिष्ठात्री और नैतिक अनुशासन की संरक्षिका के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। यह सांस्कृतिक कल्पना स्त्रीत्व को शक्ति, संरक्षण और दंड तीनों आयामों से युक्त करती है। किंतु सामाजिक सत्ता-संरचना प्रायः पुरुष-प्रधान रहती है, जिससे धार्मिक प्रतीक और सामाजिक व्यवहार के मध्य अंतर स्पष्ट होता है। उमा चक्रवर्ती ने यह प्रतिपादित किया है कि देवी-पूजा भारतीय समाज में पितृसत्ता के साथ सह-अस्तित्व में विकसित हुई है।[18] देवी की सर्वशक्तिमत्ता सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की समान सत्ता में स्वतः परिणत नहीं होती। ग्राम देवी की उपासना इस अंतर्विरोध को उद्घाटित करती है- धार्मिक क्षेत्र में स्त्री-देवत्व का उत्कर्ष, किंतु निर्णय-प्रक्रिया और सामाजिक नेतृत्व में पुरुषों की प्रधानता। जाति और जेंडर के अंतर्संबंधों की ओर संकेत करते हुए शर्मिला रेगे ने यह दर्शाया है कि शक्ति-परंपरा विभिन्न सामाजिक समूहों में भिन्न अर्थ ग्रहण करती है।[19] कई ग्रामों में निम्नवर्गीय और दलित समुदाय देवी-पूजा के माध्यम से सांस्कृतिक वैधता अर्जित करते हैं। स्त्रियाँ व्रत, गीत और अनुष्ठानों में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, जिससे धार्मिक क्षेत्र में उनकी सक्रियता स्पष्ट होती है। यह सक्रियता औपचारिक संस्थागत नियंत्रण से भिन्न एक सांस्कृतिक अधिकार-क्षेत्र का निर्माण करती है। अनुष्ठान के संदर्भ में विक्टर टर्नर का 'कम्युनितास ' सिद्धांत उपयोगी है, जिसके अनुसार अनुष्ठान सामाजिक पदानुक्रम को अस्थायी रूप से शिथिल कर सामूहिकता की अनुभूति उत्पन्न करता है।[20] ग्राम देवी के मेले और सामूहिक पूजा में स्त्रियों की सहभागिता इस सामुदायिक अनुभव को सुदृढ़ करती है, भले ही यह स्थायी सामाजिक परिवर्तन में परिवर्तित न हो। ग्राम देवी की प्रतीकात्मक संरचना में 'शक्ति' और 'नियंत्रण' दोनों अंतर्ग्रथित हैं। देवी का कोप सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन पर दंड का संकेत देता है, जबकि उनकी कृपा सामुदायिक संतुलन का आश्वासन देती है। इस प्रकार स्त्री-देवत्व सामाजिक अनुशासन की सांस्कृतिक भाषा बन जाता है। ग्राम देवी की परंपरा स्त्री-शक्ति और पितृसत्ता के बीच अंतर्निहित जटिल संबंधों को स्पष्ट करती है। यह संरचना न तो केवल मुक्ति का प्रतीक है और न ही केवल दमन

का; बल्कि यह सांस्कृतिक शक्ति-संबंधों की बहुस्तरीय अभिव्यक्ति है, जहाँ धार्मिक प्रतीक और सामाजिक यथार्थ एक-दूसरे को आकार देते हैं।

बिहार में ग्राम देवी की जीवित परंपरा और सामाजिक अनुभव : क्षेत्रीय अध्ययन

बिहार के ग्रामीण समाज में ग्राम देवी की परंपरा केवल धार्मिक विश्वास नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की संरचना में अंतर्निहित सांस्कृतिक यथार्थ है। सारण, भोजपुर, गया, मिथिला और चंपारण जैसे क्षेत्रों में ग्राम-विशिष्ट देवी-स्थलों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि प्रत्येक ग्राम अपनी ऐतिहासिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान को देवी के माध्यम से संरक्षित करता है। कहीं 'शीतला मइया' का स्थान ग्राम-सीमा पर स्थित है, तो कहीं 'काली स्थान' पुराने बरगद या पीपल के वृक्ष के नीचे स्थापित है। कई गाँवों में 'चंडी स्थान' पोखर या आहर के समीप मिलता है, जो यह संकेत करता है कि जल-स्रोत और देवी-आस्था परस्पर संबद्ध हैं। उत्तर बिहार के बाढ़-प्रभावित क्षेत्रों विशेषतः सारण और सीवान में ग्राम देवी को 'जल-प्रकोप से रक्षा करने वाली' के रूप में स्मरण किया जाता है। बाढ़ के बाद सामूहिक रूप से देवी-पूजा करना केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामुदायिक पुनर्निर्माण का प्रतीकात्मक कार्य है। इसी प्रकार दक्षिण बिहार के सूखा-प्रवण क्षेत्रों में वर्षा की कामना हेतु देवी के समक्ष विशेष अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक असुरक्षा सांस्कृतिक अनुष्ठान में रूपांतरित हो जाती है। डी. डी. कोसांबी का यह मत कि लोकदेवताओं का उद्भव सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से जुड़ा होता है, बिहार के इन अनुभवों में स्पष्ट परिलक्षित होता है।[23]

मिथिला क्षेत्र में 'ग्राम-चंडी' की पूजा कृषि-चक्र से गहराई से जुड़ी हुई है। रोपनी और कटनी के पूर्व देवी के समक्ष अर्पण करना फसल-सुरक्षा की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। भोजपुर अंचल में कई ग्रामों में यह प्रथा मिलती है कि विवाह-बारात के प्रस्थान से पूर्व वर-पक्ष देवी-स्थान पर जाकर आशीर्वाद ग्रहण करता है। ग्राम देवी सामाजिक स्वीकृति और सांस्कृतिक वैधता का स्रोत हैं। गया और नवादा क्षेत्रों में कुछ ग्रामों में देवी-स्थान न्यायिक प्रतीक के रूप में भी कार्य करता है। विवाद की स्थिति में पक्षकार देवी के समक्ष शपथ लेकर सत्य की पुष्टि करते हैं। यह विश्वास कि देवी असत्य को दंडित करेंगी, सामाजिक अनुशासन का आंतरिक तंत्र निर्मित करता है। इस संदर्भ में एमिल दुर्खीम का यह प्रतिपादन स्मरणीय है कि धार्मिक प्रतीक समाज की सामूहिक नैतिक चेतना को मूर्त रूप देते हैं।[24] बिहार के ग्राम-देवी स्थलों में यह नैतिक शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव का हिस्सा है। स्त्री-भागीदारी के संदर्भ में क्षेत्रीय अनुभव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छठ, जिउतिया, सामा-चकेवा और शीतला अष्टमी जैसे अवसरों पर स्त्रियाँ देवी-स्थान पर सामूहिक व्रत-गीत गाती हैं। इन गीतों में देवी से संतति, स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना की जाती है। लोकगीतों की यह परंपरा सामाजिक स्मृति के संरक्षण का माध्यम है। मॉरिस हाल्बवैक्स के अनुसार स्मृति सामूहिक व्यवहारों में संरक्षित रहती है;[25] बिहार की व्रत-गीत परंपरा इस सिद्धांत की पुष्टि करती है। जातीय विविधता के बावजूद ग्राम देवी का स्थल सामुदायिक एकत्रीकरण का केंद्र बना रहता है। यद्यपि नेतृत्व और अनुष्ठानिक अधिकारों में भिन्नता हो सकती है, किंतु सामूहिक सहभागिता सामाजिक एकता की अनुभूति उत्पन्न करती है। कई स्थानों पर दलित और पिछड़े वर्गों द्वारा स्थापित देवी-स्थलों ने सांस्कृतिक स्वायत्तता का भी संकेत दिया है, जिससे ग्राम-देवी परंपरा सामाजिक परिवर्तन का मंच बनती दिखाई देती है। बिहार के क्षेत्रीय अनुभव स्पष्ट करते हैं कि ग्राम देवी की परंपरा ऐतिहासिक स्मृति, पर्यावरणीय अनुभव, सामाजिक अनुशासन और सांस्कृतिक पहचान का समेकित रूप है। यह परंपरा ग्रामीण समाज के दैनिक जीवन में जीवित इतिहास के रूप में विद्यमान है—जहाँ मिथक, अनुष्ठान और सामुदायिक व्यवहार एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित हैं।

बिहार और अन्य भारतीय क्षेत्रों में ग्राम देवी परंपरा : तुलनात्मक विश्लेषण

बिहार के ग्राम देवी अनुभव को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि क्षेत्रीय रूप, नाम

और अनुष्ठान भिन्न हैं, तथापि संरचनात्मक तत्वों में गहरी समानता विद्यमान है। दक्षिण भारत, विशेषतः तमिलनाडु और कर्नाटक में 'अम्मन' परंपरा; महाराष्ट्र में 'ग्रामदेवता' की संकल्पना; तथा राजस्थान और गुजरात में स्थानीय मातृ-देवियों की उपासना इन सभी में संकट-निवारण, सीमा-रक्षा और सामुदायिक पुनर्संरचना के समान प्रतिरूप मिलते हैं। तमिलनाडु में मरीअम्मन को महामारी-निवारिणी देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। मरीअम्मन के वार्षिक उत्सवों में अग्नि-परीक्षा और सामूहिक व्रत जैसी प्रथाएँ देखने को मिलती हैं। रॉबर्ट हार्डग्रेव ने दक्षिण भारतीय समाज के अध्ययन में संकेत किया है कि मरीअम्मन ग्रामीण समुदायों के लिए रोग और सामाजिक भय के विरुद्ध सांस्कृतिक आश्रय का केंद्र हैं।[26] यह स्थिति बिहार की शीतला परंपरा से तुलनीय है, जहाँ महामारी-स्मृति देवी-पूजा के माध्यम से संरक्षित रहती है। दोनों क्षेत्रों में रोग का अनुभव धार्मिक आख्यान में रूपांतरित होकर सामाजिक एकता का साधन बनता है। महाराष्ट्र में ग्रामदेवता की अवधारणा स्थानीय सत्ता-संरचना से भी जुड़ती है। कई स्थानों पर ग्रामदेवता को भूमि-अधिकार और सामुदायिक पहचान का प्रतीक माना जाता है। गैल ओमवेट ने महाराष्ट्र की लोकदेवी परंपराओं को सामाजिक आंदोलन और जातीय अस्मिता से संबंधित बताया है।[27] यहाँ देवी-पूजा सामाजिक पुनर्संरचना और प्रतिरोध का माध्यम भी बन सकती है। बिहार में भी कुछ स्थानों पर दलित समुदायों द्वारा स्थापित देवी-स्थलों ने सांस्कृतिक स्वायत्तता का संकेत दिया है, यद्यपि यह प्रक्रिया क्षेत्रानुसार भिन्न है। राजस्थान और गुजरात के मरुस्थलीय क्षेत्रों में ग्राम देवियों का संबंध जल-स्रोतों और सीमा-रक्षा से जुड़ा है। यहाँ देवी-स्थान प्रायः गाँव की चौहद्दी पर स्थित होते हैं, जिससे वे बाहरी संकटों के विरुद्ध प्रतीकात्मक सुरक्षा का दायित्व निभाती हैं। यह संरचना बिहार के ग्राम-सीमा स्थित देवी-स्थलों से साम्य रखती है। इन तुलनात्मक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ग्राम देवी परंपरा तीन प्रमुख संरचनात्मक तत्वों पर आधारित है—

(1) ऐतिहासिक या प्राकृतिक संकट की सांस्कृतिक व्याख्या,
(2) पवित्र स्थल के माध्यम से सामुदायिक भूगोल का निर्माण, और
(3) अनुष्ठानिक सहभागिता द्वारा सामाजिक पुनर्संरचना।

क्षेत्रीय विविधता इन मूल तत्वों को स्थानीय संदर्भ प्रदान करती है, किंतु संरचनात्मक ढाँचा समान रहता है। इस प्रकार बिहार का अनुभव किसी पृथक सांस्कृतिक घटना का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि भारतीय लोकधर्म की व्यापक संरचना का अंग है। तुलनात्मक अध्ययन यह संकेत करता है कि ग्राम देवी की अवधारणा भारतीय समाज की दीर्घकालिक ऐतिहासिक स्मृति और सामुदायिक संगठन की सार्वदेशिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।

उपनिवेशकालीन अभिलेख और ग्राम देवी की औपनिवेशिक व्याख्या :

उपनिवेशकालीन भारत में ब्रिटिश प्रशासकों, मिशनरियों और इतिहासकारों ने भारतीय समाज की धार्मिक परंपराओं का व्यवस्थित सर्वेक्षण किया। इस प्रक्रिया में ग्राम देवी जैसी स्थानीय आस्थाएँ भी औपनिवेशिक लेखन का विषय बनीं, किंतु उनकी व्याख्या प्रायः यूरोकेन्द्रित दृष्टिकोण से की गई। औपनिवेशिक लेखन में लोकदेवताओं को "अंधविश्वास", "प्रिमिटिव कल्ट" या "ग्रामीण अज्ञानता" के रूप में चित्रित किया गया, जिससे उनकी सांस्कृतिक जटिलता और ऐतिहासिक अर्थ को गौण कर दिया गया। जेम्स मिल ने भारतीय धार्मिक जीवन को अवैज्ञानिक और स्थिर बताकर उसे सभ्यता की निम्न अवस्था में रखा।[28] इस दृष्टिकोण ने लोकधर्म को तर्कसंगत ऐतिहासिक स्रोत के रूप में मान्यता देने से इनकार किया। फलतः ग्राम देवी की परंपरा को सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक पिछड़ेपन के संकेत के रूप में प्रस्तुत किया गया। औपनिवेशिक गजेटियरों और जिला-रिपोर्टों में ग्राम देवी-पूजा का उल्लेख प्रशासनिक दृष्टि से मिलता है, कहीं मेलों के संदर्भ में, कहीं महामारी-निवारण संबंधी प्रथाओं के संदर्भ में। किंतु इन विवरणों में स्थानीय समाज की आत्म-व्याख्या अनुपस्थित रहती है। इस संदर्भ में रणजीत गुहा का यह तर्क उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक अभिलेख शासक-वर्ग की दृष्टि को प्रतिबिंबित करते हैं और अधीनस्थ

वर्गों की आवाज़ को दबा देते हैं।[29] ग्राम देवी की परंपरा का अध्ययन यदि केवल औपनिवेशिक स्रोतों पर आधारित हो, तो वह लोकस्मृति की वास्तविकता को पूर्णतः व्यक्त नहीं कर सकता। मिशनरी लेखन में ग्राम देवी की पूजा को 'मूर्ति-पूजा' और 'पगान प्रैक्टिस' कहकर धार्मिक सुधार की आवश्यकता के रूप में चित्रित किया गया। इस प्रकार लोकपरंपरा को सभ्यतागत सुधार की परियोजना के अंतर्गत रखा गया। किंतु यह दृष्टिकोण ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक स्वायत्तता को समझने में असमर्थ रहा। उपनिवेशकालीन कालखंड में महामारी और अकाल की घटनाओं के दौरान ग्राम देवी की पूजा में वृद्धि देखी गई। ब्रिटिश प्रशासन ने इसे अंधविश्वास का परिणाम माना, जबकि ग्रामीण समाज के लिए यह संकट-प्रबंधन का सांस्कृतिक साधन था। यहाँ दो भिन्न ज्ञान-प्रणालियों का टकराव स्पष्ट दिखाई देता है- एक ओर औपनिवेशिक वैज्ञानिक तर्क, दूसरी ओर लोकसांस्कृतिक व्याख्या। ग्राम देवी की औपनिवेशिक व्याख्या यह दर्शाती है कि लोकधर्म को समझने के लिए केवल प्रशासनिक या बाह्य दृष्टि पर्याप्त नहीं है। आवश्यक है कि लोकस्मृति, मौखिक परंपरा और सामुदायिक अनुभव को समान महत्व दिया जाए। औपनिवेशिक स्रोत उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करते हैं, किंतु उनकी आलोचनात्मक समीक्षा के बिना ग्राम देवी की परंपरा की समग्र समझ संभव नहीं है।

आधुनिकता, शहरीकरण और ग्राम देवी परंपरा में रूपांतरण :

आधुनिकता, शिक्षा के प्रसार, संचार माध्यमों के विस्तार और शहरीकरण की प्रक्रियाओं ने ग्राम देवी की परंपरा को स्थिर न रहने देकर उसे रूपांतरित किया है। यह रूपांतरण विघटनात्मक न होकर प्रायः पुनर्संरचनात्मक है अर्थात् परंपरा अपने मूल तत्वों को बनाए रखते हुए नए सामाजिक संदर्भों के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करती है। पूर्व में जहाँ ग्राम देवी का स्थल केवल पिंडी, वृक्ष या मिट्टी के चबूतरे के रूप में होता था, वहीं अब अनेक स्थानों पर पक्के मंदिरों का निर्माण हुआ है। यह परिवर्तन धार्मिक संस्थानीकरण की ओर संकेत करता है। देवी की स्थानीय पहचान कई बार व्यापक शक्ति-परंपरा दुर्गा, काली या पार्वती से जोड़ी जाती है। इससे ग्राम देवी का स्वरूप स्थानीय से अर्ध-शास्त्रीय रूप में परिवर्तित होता दिखाई देता है। आधुनिक शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार ने महामारी और प्राकृतिक संकटों की व्याख्या को भी प्रभावित किया है। रोग के कारणों को अब चिकित्सा-विज्ञान से जोड़ा जाता है, किंतु इसके साथ ही देवी-पूजा का सांस्कृतिक महत्व समाप्त नहीं हुआ है। संकट के समय सामूहिक पूजा अब भी सामाजिक एकता और मानसिक आश्वासन का माध्यम बनती है। इस संदर्भ में एमिल दुर्खीम का यह प्रतिपादन स्मरणीय है कि धर्म समाज की सामूहिक चेतना का प्रतीकात्मक रूप है।[30] आधुनिकता के बावजूद यह सामूहिक चेतना नई परिस्थितियों में पुनः अभिव्यक्त होती है। शहरी प्रवासन ने भी ग्राम देवी की परंपरा को नए आयाम दिए हैं। शहरों में बसे ग्रामीण समुदाय अपने मूल गाँव की देवी के प्रति आस्था बनाए रखते हैं और वार्षिक उत्सव के समय गाँव लौटते हैं। कुछ मामलों में शहरी बस्तियों में भी 'ग्राम देवी समिति' का गठन कर स्थानीय स्तर पर पूजा आयोजित की जाती है। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि देवी-आस्था केवल भौगोलिक स्थान तक सीमित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान का वाहक है। मीडिया और डिजिटल मंचों के माध्यम से देवी-उत्सवों का प्रसारण होने लगा है। सोशल मीडिया पर देवी-स्थान की तस्वीरें और कथाएँ साझा की जाती हैं, जिससे परंपरा का प्रसार व्यापक स्तर पर होता है। यह प्रक्रिया परंपरा के आधुनिकीकरण का उदाहरण है, जहाँ लोक और आधुनिक संचार माध्यम परस्पर अंतर्ग्रथित होते हैं। आधुनिक राज्य-व्यवस्था और विधिक संस्थाओं के सुदृढ़ होने के बावजूद ग्राम देवी की नैतिक भूमिका पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है। यद्यपि औपचारिक न्यायालय सामाजिक विवादों का निपटारा करते हैं, किंतु देवी-स्थान की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा अब भी नैतिक अनुशासन का स्रोत बनी रहती है। इस प्रकार आधुनिकता और शहरीकरण ने ग्राम देवी की परंपरा को समाप्त नहीं किया, बल्कि उसे नए सामाजिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया है। परंपरा का यह रूपांतरण इस तथ्य का प्रमाण है कि लोकधर्म गतिशील और अनुकूलनशील है। ग्राम देवी की अवधारणा आज भी ग्रामीण और प्रवासी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान का केंद्रीय तत्व बनी हुई है।

उपसंहार :

ग्राम देवी की परंपरा केवल धार्मिक आस्था का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक स्मृति, ऐतिहासिक अनुभव और सांस्कृतिक संगठन की जटिल संरचना है। ग्राम देवी के मिथकीय आख्यानों में संकट और संरक्षण की जो संरचना उभरती है, वह ग्रामीण समाज के ऐतिहासिक अनुभवों का सांस्कृतिक रूपांतरण है। महामारी, बाढ़, अकाल, सामाजिक अन्याय या बाह्य संकट सभी का सामूहिक स्मरण देवी-कथा के माध्यम से संरक्षित रहता है। इस प्रकार मिथक इतिहास का विकल्प नहीं, बल्कि उसका सांस्कृतिक विस्तार है। सांस्कृतिक स्मृति के विमर्श में जान अस्मान ने यह प्रतिपादित किया कि समाज अपने अतीत को प्रतीकों और अनुष्ठानों के माध्यम से जीवित रखता है। ग्राम देवी की वार्षिक पूजा, व्रत-गीत और मेले इसी जीवित स्मृति की प्रक्रियाएँ हैं। प्रत्येक अनुष्ठान अतीत को वर्तमान में पुनर्स्थापित करता है और सामुदायिक पहचान को सुदृढ़ करता है। सामाजिक संरचना के स्तर पर ग्राम देवी नैतिक अनुशासन और सामुदायिक एकता की अधिष्ठात्री के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। देवी-स्थान सामूहिक निर्णय, शपथ और सामाजिक मान्यता का केंद्र बनता है। यहाँ धर्म और सामाजिक नियंत्रण परस्पर अंतर्ग्रथित दिखाई देते हैं। यह स्थिति एमिल दुर्खीम के उस सिद्धांत की पुष्टि करती है कि धार्मिक प्रतीक वस्तुतः समाज की सामूहिक नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्षेत्रीय तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि बिहार, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और राजस्थान जैसे भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में ग्राम देवी की परंपरा संरचनात्मक समानता रखती है। संकट की सांस्कृतिक व्याख्या, पवित्र भूगोल का निर्माण और अनुष्ठानिक सहभागिता तीनों तत्व भारतीय लोकधर्म की साझा धारा को दर्शाते हैं। स्थानीय विविधताओं के बावजूद मूल संरचना समान रहती है। आधुनिकता और शहरीकरण की प्रक्रियाओं ने ग्राम देवी की परंपरा को परिवर्तित अवश्य किया है, किंतु समाप्त नहीं किया। परंपरा ने स्वयं को नए सामाजिक संदर्भों में पुनर्संगठित किया है। पक्के मंदिरों का निर्माण, शहरी प्रवासियों द्वारा पूजा-समितियों का गठन और डिजिटल माध्यमों के उपयोग ने परंपरा को नए आयाम दिए हैं। यह परिवर्तन दर्शाता है कि लोकधर्म स्थिर नहीं, बल्कि अनुकूलनशील और गतिशील है। ग्राम देवी की परंपरा भारतीय इतिहास की उस जीवित धारा का प्रतिनिधित्व करती है, जो अभिलेखीय स्रोतों से परे लोकस्मृति और सांस्कृतिक व्यवहारों में संरक्षित रहती है। मिथक, अनुष्ठान और पवित्र भूगोल सभी मिलकर सामाजिक निरंतरता की संरचना निर्मित करते हैं। ग्राम देवी की अवधारणा इस सत्य को उद्घाटित करती है कि इतिहास केवल राजकीय अभिलेखों में नहीं, बल्कि लोकजीवन की सांस्कृतिक संरचनाओं में भी निहित है।

संदर्भ :

1. मिल, जेम्स, *हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया*, जेम्स मरे, लंदन, 1817, पृ. 112
2. मजूमदार, आर. सी., *भारतीय संस्कृति का इतिहास*, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1951, पृ. 89
3. कोसांबी, डी. डी., *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 134
4. थापर, रोमिला, *इतिहास और परंपरा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 145
5. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 89, पृ. 56
6. मार्कंडेय पुराण, *देवी महात्म्य*, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2003, पृ. 212
7. शर्मा, रामशरण, *भारतीय सामंतवाद*, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1980, पृ. 178
8. थापर, रोमिला, पूर्वोक्त, पृ. 145।
9. अस्मान, जान, कल्चरल मेमोरी एंड अर्ली सिविलाइजेशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2011, पृ. 74
10. हाल्बवैक्स, मॉरिस, *ऑन कलेक्टिव मेमोरी*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1992, पृ. 85
11. दुर्खीम, एमिल, *अर्ली फॉर्म ऑफ़ रिलीजियस लाइफ*, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन, 1912, पृ. 78

12. वही
13. तुआन, यी-फू, *स्पेस एंड प्लेसः द पर्सपेक्टिव ऑफ एक्सपीरियंस*, यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा प्रेस, मिनियापोलिस, 1977, पृ. 102
14. टर्नर, विक्टर, *द रिचुअल प्रोसेस*, एल्डाइन पब्लिशिंग, शिकागो, 1969, पृ. 94
15. दुर्खीम, एमिल, पूर्वोक्त, पृ. 78
16. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. 178
17. मिश्र, विद्यानिवास, *लोकसंस्कृति और परंपरा*, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1995, पृ. 152
18. चक्रवर्ती, उमा, *जेंडरिंग कास्ट*, काली फॉर विमेन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 210
19. रेगे, शर्मिला, *राइटिंग कास्ट, राइटिंग जेंडर*, ज़ुबान, नई दिल्ली, 2006, पृ. 134
20. टर्नर, विक्टर, *द रिचुअल प्रोसेस*, एल्डाइन पब्लिशिंग, शिकागो, 1969, पृ. 94
21. कोसांबी, डी. डी., पूर्वोक्त, पृ. 136
22. दुर्खीम, एमिल, पूर्वोक्त, पृ. 78
23. कोसांबी, डी. डी., पूर्वोक्त, पृ. 136,
24. दुर्खीम, एमिल, पूर्वोक्त, पृ. 79
25. हाल्बवैक्स, मॉरिस, पूर्वोक्त, पृ. 86
26. हार्डग्रेव, रॉबर्ट, *द द्रविडियन मूवमेंट*, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1965, पृ. 56
27. ओमवेट, गैल, *कल्चरल रिवोल्ट इन ए कोलोनियल सोसाइटी*, साइंटिफिक सोशलिस्ट एजुकेशन ट्रस्ट, मुंबई, 1976, पृ. 88
28. मिल, जेम्स, पूर्वोक्त, पृ. 115
29. गुहा, रणजीत, *सबाल्टर्न स्टडीज़ I*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1982, पृ. 7
30. दुर्खीम, एमिल, पूर्वोक्त, पृ. 78